

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 1: राजा प्रियव्रत की कथा

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



दूसरे सूर्य के समान तेजोमय होकर राजा प्रियव्रत रात्रि को भी दिन बनाने के संकल्प से पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं — और उनके रथ के पहियों से बनी लीकें सात महासागर बनकर पृथ्वी को सात द्वीपों में विभाजित कर देती हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। इस अध्याय के साथ हम एक और सीमा पार करते हैं: चतुर्थ स्कन्ध समाप्त हो चुका है, और पंचम स्कन्ध का आरम्भ होता है। जहाँ पूर्ववर्ती स्कन्धों में भगवान् की सृष्टि, उनके अवतार और उनके भक्तों की वंश-परम्पराएँ वर्णित हुईं, वहीं अब पंचम स्कन्ध पृथ्वी के महान् राजाओं की ओर मुड़ता है

— और उनके माध्यम से स्वयं सृष्ट जगत् के स्वरूप की ओर। इसका आरम्भ स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत की विराट् मूर्ति से होता है: एक ऐसी आत्मा जो अपने में इतनी लीन थी कि केवल संसार त्यागना चाहती थी, फिर भी जिसे स्वयं सृष्टिकर्ता ने संसार पर शासन करने का आदेश दिया। यह प्रथम अध्याय बताता है कि किस प्रकार एक सिद्ध भक्त ने राज्य को बिना उससे बँधे स्वीकार किया, किस प्रकार उनके तेजोमय रथ ने सात सागरों को गढ़ा, किस प्रकार उन्होंने पृथ्वी को अपने पुत्रों में बाँटा, और अन्ततः किस प्रकार समस्त साम्राज्य को शिव के समान त्यागकर वे उसी स्वतन्त्रता में लौट गए जिसे उन्होंने कभी वस्तुतः छोड़ा ही नहीं था।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 1 (प्रथम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: राजा प्रियव्रत की कथा
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह समस्त संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित शौनक आदि ऋषियों की सभा को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: स्वायम्भुव मनु का दरबार तथा गन्धमादन पर्वत की घाटी, जहाँ ब्रह्मा अवतरित होते हैं; और विराट् स्तर पर सम्पूर्ण भूमण्डल, जिसकी प्रियव्रत के रथ से परिक्रमा होती है
- केन्द्रीय विषय: किस प्रकार आत्मलीन राजकुमार प्रियव्रत ने ब्रह्मा की आज्ञा से पृथ्वी के शासन का भार स्वीकार किया, अनेक युगों तक उसे अनासक्त भाव से चलाया, उसके सात सागर और सात द्वीप बनाए, और अन्त में सब कुछ त्यागकर भक्ति के मार्ग पर लौट गए
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 1, श्लोक 1-41
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

एक राजा की सच्ची शंका

पंचम स्कन्ध का आरम्भ किसी कथा से नहीं, अपितु एक प्रश्न से होता है — और वह भी बड़ा स्वाभाविक। श्रीशुकदेव के चरणों में बैठे राजा परीक्षित व्याकुल हैं। उन्होंने सुना है कि प्रियव्रत *भागवत* थे — महान् भक्त, और *आत्माराम* — जो अपना समस्त आनन्द आत्मा में ही पाते हैं। तब, वे पूछते हैं, ऐसी आत्मा गृहस्थ-जीवन में रम ही कैसे सकी? क्योंकि परीक्षित के विचार से गृहस्थ-जीवन तो *कर्म* के बन्धन का मूल है और अपने वास्तविक स्वरूप का महान् आवरण। यह उचित नहीं जान पड़ता कि आसक्ति से मुक्त पुरुष स्वयं को घर, पत्नी और सन्तान से इस प्रकार बाँध ले। सम्पूर्ण अध्याय इसी शंका के समाधान के लिए रचा गया है।

राजोवाच

प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ।

गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥ १ ॥

rājovāca priyavrato bhāgavata ātmārāmaḥ katham mune gṛhe 'ramata yan-mūlaḥ karma-bandhaḥ parābhavaḥ

अर्थ: राजा ने कहा: हे मुनि! प्रियव्रत तो भगवान् के महान् भक्त और आत्मा में ही रमण करने वाले थे। फिर वे उस गृहस्थ-जीवन में कैसे रमे, जो कर्म-बन्धन का मूल और उच्चतर प्रयोजन का नाश करने वाला है? (स्कन्ध 5, अध्याय 1, श्लोक 1)

श्रीशुकदेव का उत्तर कोमल और सटीक है। वे स्वीकार करते हैं कि परीक्षित का कहना सर्वथा उचित है — और फिर भी जिनका मन भगवान् के चरण-कमलों के मधु में पहले से डूबा है, वे विघ्नों के बीच भी भगवान् की कथा-श्रवण के मंगलमय अभ्यास को नहीं छोड़ते। अर्थात्, बाह्य परिस्थितियाँ किसी भक्त की आन्तरिक स्वतन्त्रता का निर्णय नहीं करतीं।

श्रीशुक उवाच बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंस दयितकथां
किञ्चिदन्तरायविहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥ ५ ॥

śrī-śuka uvāca bāḍham uktaṁ bhagavata uttamaślokaśya śrīmac-caraṇāravinda-makaranda-rasa āveśita-cetaso bhāgavata-paramahaṁsa-dayita-kathāṁ kiñcid antarāya-vihatāṁ svām śivatamāṁ padavīm na prāyeṇa hinvanti

अर्थ: श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा: तुमने जो कहा, वह ठीक है। फिर भी जिनका चित्त उत्तमश्लोक भगवान् के चरण-कमलों के मकरन्द-रस में लीन हो चुका है और जो भक्तों तथा मुक्त पुरुषों को प्रिय कथाओं में रमते हैं, वे किसी बाधा के बीच में आ जाने पर भी अपने उस परम मंगलमय पथ को प्रायः नहीं छोड़ते। (स्कन्ध 5, अध्याय 1, श्लोक 5)

श्रीशुकदेव के इस उत्तर के परीक्षित की शंका से इतनी पूर्णता से मेल खाने का एक गहरा कारण है। जिस “बाधा” का उल्लेख वे करते हैं — वह गृहस्थ-जीवन जो प्रियव्रत के चिन्तन-व्रत को निगल गया प्रतीत होता है — आगे चलकर पता चलता है कि वह कोई बाधा ही नहीं, अपितु स्वयं भगवान् की उसी में कार्यरत व्यवस्था है। ब्रह्मा शीघ्र ही प्रियव्रत से स्पष्ट कहेंगे कि स्वयं ब्रह्मा से लेकर लघुतम प्राणी तक कोई भी परम भगवान् के विधान से बाहर कर्म नहीं कर सकता (श्लोक 11-13); वही गृहस्थ-कर्तव्य जो प्रियव्रत की भक्ति के लिए संकट-सा प्रतीत हुआ, स्वयं उसी विधान द्वारा उन्हें सौंपा गया था। यही इस अध्याय की सबसे गहरी शिक्षा है: भगवान् स्वयं जो बाधा किसी भक्त के मार्ग पर रखते हैं, वह कभी उसका पतन नहीं, अपितु कृपा का ही आगे बढ़ता हुआ रूप है, और जो आत्मा एक बार उन चरण-कमलों में स्थिर हो चुकी, उसे भगवान् द्वारा भेजी गई कोई भी वस्तु — सिंहासन तक भी — विचलित नहीं कर सकती (श्लोक 5, 11-13)।

श्रीशुकदेव बताते हैं कि प्रियव्रत ने नारद के चरणों की सेवा से सुगमता से परम सत्य जान लिया था और वे आत्मा के चिन्तन के आजीवन व्रत की ओर बढ़ रहे थे, तभी उनके पिता स्वायम्भुव मनु ने उन्हें पृथ्वी पर शासन करने के लिए बुलाया। प्रियव्रत ने इस आज्ञा का स्वागत नहीं किया। उन्हें भय था कि शासन ग्रहण करने से उनकी आत्मा पुनः अनात्मा के सम्पर्क में खिंच जाएगी — यद्यपि वे भली-भाँति जानते थे कि अनात्मा की कोई अन्तिम सत्ता है ही नहीं।

ब्रह्मा स्वयं समाधान करने आते हैं

कर्तव्य के इस मौन संकट में स्वयं सृष्टिकर्ता आ पहुँचते हैं। ब्रह्मा — स्वयम्भू, देवों में प्रथम, सदा लोकों के संचालन में तत्पर — अपने धाम से चारों वेदों को साकार रूप में साथ लिए और मरीचि आदि ऋषियों के परिकर सहित पृथ्वी पर उतरते हैं। चन्द्रमा के समान देदीप्यमान, मार्ग में विमानों पर आरूढ़ देवों से पूजित तथा सिद्धों, गन्धर्वों, साध्यों, चारणों और ऋषियों के समूहों द्वारा वन्दित होते हुए, वे गन्धमादन पर्वत की घाटी में उतरकर राजकुमार के समीप आते हैं। हंस-वाहन से अपने पिता ब्रह्मा को पहचानकर नारद तुरन्त उठ खड़े होते हैं और मनु तथा प्रियव्रत के साथ हाथ जोड़कर उनका पूजन करते हैं।



स्वयम्भू ब्रह्मा अपने हंस पर आरूढ़ होकर गन्धमादन पर्वत की घाटी में उतरते हैं, मार्ग में दिव्य प्राणियों से पूजित होते हुए, ताकि अनिच्छुक राजकुमार प्रियव्रत को उपदेश दें (श्लोक 7-10)।

ब्रह्मा का उपदेश

तब ब्रह्मा बोलते हैं — और उनके वचन इस अध्याय की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं में से हैं। वे प्रियव्रत से स्पष्ट कहते हैं: भगवान् में दोष मत देखो, जिनकी आज्ञा का पालन हम सब बिना अपवाद के करते हैं — स्वयं ब्रह्मा और भगवान् शिव से लेकर मनु और महर्षि नारद तक। कोई भी देहधारी, वे कहते हैं, जो भगवान् ने विधान किया है उसे नहीं टाल सकता — न तप से, न विद्या से, न योगबल से, न धन या पुण्य से, चाहे अकेले हो या किसी की सहायता से। जीव अनुभव के लिए — जन्म-मृत्यु, शोक-मोह, सुख-दुःख — तथा कर्म करने के लिए भगवान् द्वारा शरीर से बँधे हैं। तीन गुणों की डोरियों से दैव-विधान की महारज्जु में कसे हुए, हम सब अपने नियत भार वहन करते हैं, ब्रह्मा कहते हैं, ठीक वैसे ही जैसे नकेल में बँधे बैल।

किन्तु फिर आता है उपदेश का मर्म, और वही परीक्षित की प्रारम्भिक शंका का सीधा उत्तर है। ब्रह्मा समझाते हैं कि मुक्त पुरुष संसार में अपनी नियत भूमिका निभाता रह सकता है, फिर भी कभी देह से तादात्म्य नहीं करता — ठीक वैसे ही जैसे अभी-अभी जागा हुआ व्यक्ति स्वप्न को स्मरण तो करता है पर उसमें फँसता नहीं। वास्तविक संकट घर नहीं, अपितु अजित इन्द्रियाँ हैं: जिसने छह भीतरी शत्रुओं को नहीं जीता, वह

उन्हें वन-वन में भी साथ लिए फिरता है; जबकि जिसने उन्हें जीत लिया और आत्मा में रमता है, उसका घर कुछ नहीं बिगाड़ता। और सर्वोत्तम, ब्रह्मा कहते हैं, यह है कि उन शत्रुओं को पहले घर रूपी दुर्ग में रहते हुए ही जीत लो, उस भगवान् के चरण-कमलों की शरण लेकर जिनकी नाभि में कमल है। तब इस पृथ्वी पर परम पुरुष द्वारा नियत भोगों को भोगो, और तत्पश्चात् सर्वथा अनासक्त होकर आत्मा में स्थित हो जाओ।



मनु और नारद की उपस्थिति में ब्रह्मा प्रियव्रत को उपदेश देते हैं कि भगवान् के चरण-कमलों की शरण में स्थित आत्मा बिना बन्धन के संसार पर शासन कर सकती है, और उन्हें भगवान् द्वारा नियत कर्तव्य स्वीकारने को कहते हैं (श्लोक 11-19)।

त्वं त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोश-
दुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ।
भुङ्क्ष्वेह भोगान् पुरुषातिदिष्टान्
विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥ १९ ॥

tvaṁ tv abja-nābhāṅghri-saroja-kośa- durgāśrito nirjita-ṣaṭ-sapatnaḥ bhuṅkṣveha bhogān puruṣātidīṣṭān vimukta-saṅgaḥ prakṛtiṁ bhajasva

अर्थ: जिन भगवान् की नाभि कमल का आसन है, उनके चरण-कमलों के दुर्ग की शरण लेकर तुमने छहों शत्रुओं को जीत लिया है। अतः इस पृथ्वी पर परम पुरुष द्वारा तुम्हारे लिए नियत मंगलों को भोगो, और सर्वथा अनासक्त होकर आत्मा में स्थित रहो। (स्कन्ध 5, अध्याय 1, श्लोक 19)

प्रियव्रत सिंहासन स्वीकार करते हैं

इस प्रकार उपदेश पाकर प्रियव्रत विनम्रता के प्रतीक-रूप अपना सिर झुकाकर “बहुत अच्छा” कहते हुए ब्रह्मा की आज्ञा स्वीकार करते हैं। मनु द्वारा सम्मानित होकर ब्रह्मा तब अपने धाम को लौट जाते हैं, वाणी और मन से परे उस परम सत्य का चिन्तन करते हुए, जबकि प्रियव्रत और नारद शान्त हृदय से उन्हें निहारते रहते हैं। मनु का भी अपना अभिलाष अब पूर्ण हो गया — पुत्र को राज्य सौंपकर तप के लिए वन जाने का —

अतः वे प्रियव्रत को पृथ्वी का शासक नियुक्त कर गृहस्थ-सुख की कामना सदा के लिए त्याग देते हैं, जिसे शास्त्र विषैले जल से भरे भयंकर सरोवर के समान बताता है। भगवान् — उस सर्वप्राचीन पुरुष — के चरणों के निरन्तर ध्यान से अत्यन्त शुद्ध हुए वे सम्राट्, ऋषि कहते हैं, मुख्यतः श्रेष्ठजनों की आज्ञा के सम्मान हेतु ही संसार पर शासन करते हैं।

प्रियव्रत तब देवशिल्पी विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से विवाह करते हैं और उनसे दस पुत्र उत्पन्न करते हैं — प्रत्येक अपने पिता के समान चरित्र, गुण, सौन्दर्य और पराक्रम में महान् — तथा एक पुत्री, ऊर्जस्वती, जो सबसे छोटी है। दसों पुत्र अग्निदेव के रूपों के नाम धारण करते हैं: आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि। इनमें से तीन — कवि, महावीर और सवन — आजीवन ब्रह्मचारी रहे, शैशव से ही आत्मज्ञान के अध्ययन में लगे और अन्ततः संन्यास-आश्रम में प्रवेश कर, भगवान् वासुदेव के प्रति अखण्ड भक्ति के फलस्वरूप हृदय में परम साक्षात्कार को प्राप्त हुए। दूसरी पत्नी से भी प्रियव्रत के तीन पुत्र हुए — उत्तम, तामस और रैवत — जिनमें से प्रत्येक ने आगे चलकर एक-एक मन्वन्तर का अधिष्ठान किया।



अपने पिता स्वयम्भुव मनु द्वारा पृथ्वी के सम्राट् रूप में अभिषिक्त होकर, शुद्ध हृदय प्रियव्रत सार्वभौम शासन ग्रहण करते हैं, उनका मन अब भी भगवान् के चरणों में स्थिर है (श्लोक 22-28)।

वह रथ जिसने सागर गढ़े

एक प्रायः अकल्पनीय अवधि तक — शास्त्र इसे ग्यारह अर्बुद वर्ष (1,10,00,00,000; एक अर्बुद अर्थात् दस करोड़) बताता है — प्रियव्रत ने पृथ्वी पर शासन किया, इतने बलशाली कि उनकी धनुष-प्रत्यंचा की टंकार-मात्र से धर्म के शत्रु भाग खड़े होते थे। फिर भी एक बात उन्हें अखरती थी। उन्होंने देखा कि सूर्य जब सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करता है, तो एक समय में पृथ्वी के केवल आधे भाग को ही प्रकाशित करता है और दूसरा आधा भाग रात्रि के अन्धकार में डूबा रहता है। यह उन्हें स्वीकार न था। भगवान् की उपासना से बढ़े अपने अलौकिक तेज से युक्त होकर प्रियव्रत सूर्य के समान ही देदीप्यमान और वेगवान् रथ पर आरूढ़ हुए और, दूसरे सूर्य की भाँति, सूर्य के पीछे-पीछे पृथ्वी की सात परिक्रमाएँ कीं — इस संकल्प से कि रात्रि को भी दिन बना देंगे।

उनके रथ के पहियों की धुरों से बनी गहरी लीकें सात महासागर बन गईं, और उनसे घिरी भूमियाँ जगत् के सात द्वीप बन गईं।



प्रियव्रत के तेजोमय रथ के पहियों से बनी लीकें सात सागर बन जाती हैं, और उनसे घिरी भूमियाँ भूमण्डल के सात संकेन्द्री द्वीप बन जाती हैं (श्लोक 31-33)।

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन् यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः ॥ ३१ ॥

ye vā u ha tad-ratha-caraṇa-nemi-kṛta-parikhātās te sapta sindhava āsan yata eva kṛtāḥ sapta bhuvo dvīpāḥ

अर्थ: उनके रथ के पहियों की धुरों से खुदी हुई खाइयाँ सात समुद्र बन गई, और उनसे पृथ्वी सात द्वीपों में विभक्त हो गई। (स्कन्ध 5, अध्याय 1, श्लोक 31)

सात द्वीपों के नाम हैं — जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप — प्रत्येक अपने से पूर्व वाले से दुगुना, और प्रत्येक पिछले को घेरे हुए उससे परे स्थित। उन्हें घेरने वाले सात सागर क्रमशः नमकीन जल, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दुग्ध, दधि और शुद्ध मधुर जल से भरे हैं — प्रत्येक सागर अपने द्वीप की खाई के समान और उसी के बराबर विस्तार वाला। प्रियव्रत ने तब अपने सात पुत्रों — आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र — को इन सात द्वीपों में से एक-एक का शासक नियुक्त किया।

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्त द्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथानुपूर्व सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्परित उपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु

बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥

३३ ॥

kṣārodekṣu-rasoda-suroda-ghṛtoda-kṣīroda-dadhi-maṇḍoda-śuddhodāḥ sapta jaladhayaḥ sapta dvīpa-parikhā ivābhyantara-dvīpa-samānā ekaikaśyena yathānupūrvam saptasv api bahir dvīpeṣu prthak parita upakalpītās teṣu jambv-ādiṣu barhiṣmatī-patir anuvratān ātmajān

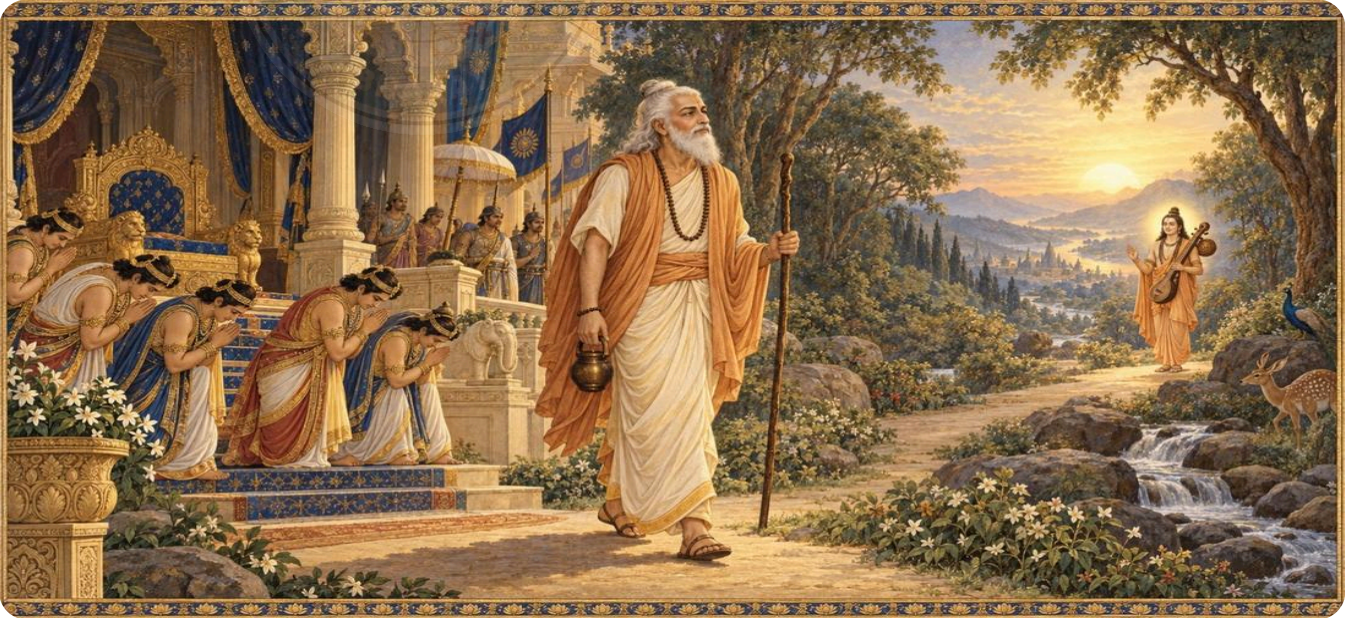
āgnīdhredhmajihva-yajñabāhu-hiraṇyareto-ghṛtapṛṣṭha-medhātithi-vītihotra-samjñān yathā-
saṅkhyenaikaikasminn ekam evādhipatiṁ vidadhe

अर्थ: सातों द्वीपों में से प्रत्येक को अपने ही बराबर चौड़ाई की खाई के समान घेरे हुए सात भिन्न जलराशियाँ हैं — खारा जल, ईख का रस, मदिरा, घी, दूध, दही का तोड़ और निर्मल जल — जम्बूद्वीप से आरम्भ कर एक-एक द्वीप के चतुर्दिक् इसी क्रम में स्थित। इन्हीं द्वीपों में से प्रत्येक पर बर्हिष्मती के पति ने अपने ही किसी एक आज्ञाकारी पुत्र को उसका एकमात्र अधिपति नियुक्त किया। (स्कन्ध 5, अध्याय 1, श्लोक 33)

अपनी पुत्री ऊर्जस्वती का विवाह उन्होंने असुर-राजाओं के आचार्य उशना अर्थात् शुक्राचार्य से किया; और उसी से प्रसिद्ध देवयानी का जन्म हुआ। श्रीशुकदेव कहते हैं कि भगवान् के भक्त में ऐसी उपलब्धियाँ कोई आश्चर्य नहीं — क्योंकि नीच कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी एक बार सच्चे भाव से भगवान् का नाम उच्चारण करते ही बन्धन से मुक्त हो जाता है।

साम्राज्य को त्याग देना

फिर, अपने अपार बल के शिखर पर, प्रियव्रत के हृदय में परिवर्तन आया। नारद के चरणों की शरण लेने के पश्चात् भी उन्हें अनुभव हुआ कि इन्द्रिय-जगत् के दीर्घ सम्पर्क ने उन्हें दुःखी कर रखा है, और उन्होंने स्वयं को धिक्कारा: कितना बड़ा अनर्थ मैंने किया, उन्होंने सोचा, कि मैंने स्वयं को इन्द्रियों द्वारा अविद्या से उत्पन्न भोगों के भ्रामक गर्त में फिँकवा दिया। “बस, इनसे बहुत हुआ!” उन्होंने कहा। “धिक्कार है मुझ पर, जो इस स्त्री के मनोरंजन का एक वानर-मात्र बन गया।” लौटती हुई इस विवेक-ज्योति में, जो परम भगवान् की कृपा से प्राप्त हुई, प्रियव्रत ने पृथ्वी को अपने भक्त पुत्रों में बाँट दिया, अपनी रानी और साम्राज्य-लक्ष्मी को शव के समान त्याग दिया, और एक बार फिर उस त्याग के मार्ग पर चल पड़े जो नारद ने उन्हें पहले दिखाया था — उनका हृदय अब भगवान् की लीलाओं की महिमा से परिपूर्ण था।



भगवान् की कृपा से विवेक पुनः प्राप्त कर प्रियव्रत पृथ्वी को अपने पुत्रों में बाँट देते हैं, रानी और साम्राज्य को निर्जीव वस्तु की भाँति त्याग देते हैं, और नारद द्वारा दिखाए त्याग के मार्ग पर लौट जाते हैं (श्लोक 36-38)।

परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सह महाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥ ३८ ॥

para-devatā-prasādādhigatātma-pratyavamarśenānupravṛttebhyaḥ putrebhya imāṁ yathā-dāyaṁ vibhajya bhukta-bhogāṁ ca mahiṣīṁ mṛtakam iva saha mahā-vibhūtim apahāya svayaṁ nihita-nirvedo hṛdi gṛhīta-hari-vihārānubhāvo bhagavato nāradasya padavīm punar evānusaśāra

अर्थ: परम देवता की कृपा से आत्मविवेक पुनः प्राप्त कर प्रियव्रत ने इस पृथ्वी को अपने आज्ञाकारी पुत्रों में उनके भाग के अनुसार बाँट दिया, अपनी भोगी हुई रानी को अपार वैभव सहित शव के समान त्याग दिया, और — अब वैराग्य में स्थित तथा हृदय में श्रीहरि की लीलाओं की महिमा धारण किए — पुनः महर्षि नारद द्वारा दिखाए मार्ग पर चल पड़े। (स्कन्ध 5, अध्याय 1, श्लोक 38)

अध्याय का समापन उन श्लोकों से होता है जिन्हें प्राचीनों ने प्रियव्रत की स्तुति में गाया: भगवान् के भक्त के अतिरिक्त और कौन वह कर सकता था जो प्रियव्रत ने किया — अपने रथ की लीकों से सात सागर गढ़ना, समस्त जीवों के हित के लिए पृथ्वी को बाँटना, और प्रत्येक द्वीप की सीमा उसकी अपनी नदियों और पर्वतों से नियत करना? और, परम पुरुष के सेवकों के प्रति अनुरक्त होकर, उन्होंने अधोलोक, स्वर्ग और पृथ्वी की समस्त सम्पदाओं को — तथा कर्म या योग से अर्जित सम्पदाओं को भी — नरक से बढ़कर कुछ नहीं माना।

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् ।

यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥ ४१ ॥

bhaumaṁ divyaṁ mānuṣaṁ ca mahitvaṁ karma-yogajam yaś cakre nirayaupamyam puruṣānujana-priyaḥ

अर्थ: परम पुरुष के सेवकों के प्रिय उन प्रियव्रत ने कर्म अथवा योगबल से प्राप्त समस्त महत्ता को — चाहे वह पार्थिव हो, दिव्य हो या मानवी — नरक के समान ही तुच्छ माना। (स्कन्ध 5, अध्याय 1, श्लोक 41)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. स्वतन्त्रता आन्तरिक है, बाह्य परिस्थिति में नहीं। परीक्षित की शंका — कि गृहस्थ-जीवन भक्त को भी बाँधता ही होगा — का उत्तर प्रियव्रत का सम्पूर्ण जीवन है। जहाँ मन भगवान् में स्थिर है, वहाँ न सिंहासन आत्मा को बाँध सकता है, न परिवार (श्लोक 1, 5-6)।
2. भगवान् की आज्ञा हमारी आध्यात्मिक रुचियों से भी ऊपर है। प्रियव्रत केवल चिन्तन चाहते थे, पर ब्रह्मा ने दिखाया कि न ब्रह्मा स्वयं, न शिव, न स्वयं नारद — कोई भी तप, विद्या अथवा बल के बूते भगवान् के विधान को टाल नहीं सकता (श्लोक 11-13)। हम जो भी शरीर धारण करते हैं, जो भी सुख-दुःख भोगते हैं, वह सब उन्हीं की व्यवस्था है; हम उसे ठीक वैसे ही वहन करते हैं जैसे बैल अपनी नाक में पिरोई रस्सी से

खिंचकर जहाँ ले जाया जाए वहीं चला जाता है, और हमें वैसे ही सन्तुष्ट होकर निर्देशित होना चाहिए जैसे एक अन्धा व्यक्ति आँख वाले किसी सहारे के इशारे पर चलता है (श्लोक 14-15)। गुरुजनों के माध्यम से आई भगवान् की नियत आज्ञा स्वीकारना ही उच्चतर भक्ति है (श्लोक 11-19)।

3. पहले भीतरी शत्रुओं को जीतो। ब्रह्मा का उपदेश शाश्वत है: छह शत्रु — निरंकुश इन्द्रियाँ और मन — हम जहाँ भी भागें, साथ चलते हैं। अतः उन्हें अपने वर्तमान कर्तव्यों के “दुर्ग” में रहते हुए ही वश में करना श्रेष्ठ है (श्लोक 17-18)।

4. सेवा-भाव से किया कर्म बाँधता नहीं, शुद्ध करता है। प्रियव्रत ने युगों तक शासन किया, विवाह किया, राजाओं को जन्म दिया, फिर भी “भगवान् के चरणों के निरन्तर ध्यान से अत्यन्त शुद्ध” बने रहे (श्लोक 23)।

5. त्याग कर्तव्य-जीवन का विरोधी नहीं, उसका पूर्णता है। जब कार्य पूरा हो गया, प्रियव्रत ने समस्त साम्राज्य को “शव के समान” त्याग दिया और नारद के मार्ग पर लौट गए — यह दर्शाते हुए कि सच्चा वैराग्य अपने समय पर परिपक्व होता है (श्लोक 36-38)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में उन सबके लिए एक शान्त आश्वासन छिपा है जिन्हें कभी लगा हो कि सामान्य उत्तरदायित्व आध्यात्मिक जीवन के शत्रु हैं। प्रियव्रत अखण्ड चिन्तन में बैठने के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहते थे, और उन्हें अवश्य लगा होगा कि साम्राज्य का शासन उन्हें भगवान् से ही दूर खींच ले जाएगा। किन्तु स्वयं सृष्टिकर्ता आकर उन्हें अन्यथा बताते हैं। समस्या, ब्रह्मा ने कहा, कभी घर या सिंहासन नहीं थी — अपितु अजित इन्द्रियाँ थीं, जिन्हें मनुष्य वन में उतनी ही निश्चितता से साथ ले जाता है जितनी महल में। प्रियव्रत की महानता कर्तव्यों से भागने में नहीं, अपितु विराट् कर्तव्यों को निभाने में है — संसार पर शासन, उसके सागरों का निर्माण, सन्तों और राजाओं का कुल पालना — और वह भी अपना हृदय पूरे समय भगवान् के चरणों में स्थिर रखते हुए। और जब समय आया, उन्होंने राज्य, रानी और सम्पूर्ण वैभव को एक साथ वैसे ही त्याग दिया जैसे कोई पहले से मृत शरीर को त्याग देता है, बिना किसी वस्तु को पकड़े रखे। उनका जीवन हमें बताता है कि हमारी स्वतन्त्रता का माप यह नहीं कि संसार हमसे कितना कम माँगता है, अपितु यह कि जो भी माँगता है उसे हम कितनी हल्की पकड़ से थामते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज एक ऐसा साधारण कर्तव्य चुनिए जिससे आप प्रायः खीझते हैं — कार्यस्थल का कोई काम, घर की कोई ज़िम्मेदारी, कुछ ऐसा जो आपके और आपके इच्छित जीवन के बीच बाधा-सा लगता है। उसे आरम्भ करने से पहले रुकिए और उसे भगवान् को अर्पित करते हुए मन में दोहराइए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” फिर उसे इतनी सावधानी से कीजिए मानो वह पूजा हो, प्रियव्रत का स्मरण करते हुए जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन किया पर उसे अपने हृदय को छूने न दिया। कर्म भगवान् के लिए हो जाने दीजिए, और देखिए कैसे खीझ की पकड़ ढीली पड़ जाती है।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का यह प्रथम अध्याय एक ऐसे प्रश्न का उत्तर देता है जो एक प्राचीन राजा की कथा से कहीं आगे तक जाता है। क्या भगवान् में सच्ची निष्ठा रखने वाली आत्मा संसार में पूर्णरूप से जी सकती है — सत्ता ग्रहण कर, परिवार बसा, विराट् उत्तरदायित्व वहन कर — बिना उस भक्ति को खोए? प्रियव्रत में भागवत एक गूँजता हुआ “हाँ” देता है। आजीवन त्याग के कगार से पृथ्वी पर शासन के लिए बुलाए जाकर उन्होंने

आज्ञा मानी, और उस शासन को ही पूजा बना लिया: अपने तेजोमय रथ में जगत् की परिक्रमा करते हुए, उसके सागर गढ़ते हुए, उसकी भूमियाँ योग्य पुत्रों में बाँटते हुए, और यह सब करते हुए भगवान् की सेवा के समक्ष प्रत्येक पार्थिव और दिव्य वैभव को नरक-तुल्य मानते हुए। फिर, कर्तव्य पूरा होने पर, वे बिना पीछे मुड़े उससे चले गए। उनका जीवन पंचम स्कन्ध के शिखर पर एक ही व्यक्ति में समाहित *कर्मयोगी* और *परमहंस* की जीवन्त परिभाषा के रूप में खड़ा है — और इस आश्वासन के रूप में कि भगवान् तक लौटने का मार्ग उन्हीं कर्तव्यों के आर-पार जाता है, जिन्हें उन्होंने हमारे हाथों में सौंपा है, न कि उनके इर्द-गिर्द से।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, *श्रीमद्भागवत महापुराण* (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), पंचम स्कन्ध, प्रथम अध्याय, “प्रियव्रत की कथा”, पृष्ठ 439–444।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-1-the-story-of-king-priyavrata-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट